पंक्ति संख्या

सत्संग और कुसंग

श्रीमद्भगवद्गीता (२/६२-६३) में मनुष्य के पतन तथा सर्वनाश के कारण का क्रम बताते हुए भगवान् ने कहा है -

ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।
सङ्गात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते।।

अर्थात्, *'(हे अर्जुन! मनसहित इन्द्रियों को वश में करके मेरे परायण न होने से) पुरुष के मन द्वारा विषयों का चिन्तन होता है, विषयों का चिन्तन करने से (पुरुष की) उन विषयों में आसक्ति हो जाती है, आसक्ति से उन विषयों की कामना उत्पन्न होती है, कामना में विघ्न पड़ने से क्रोध उत्पन्न होता है...'।।*

क्रोधाद्भवति सम्मोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति।।

'...क्रोध से अविवेक अर्थात् मूढ़भाव उत्पन्न होता है, और अविवेक से स्मरण-शक्ति भ्रमित हो जाती है, स्मृति के भ्रमित हो जाने से बुद्धि अर्थात् ज्ञान-शक्ति का नाश हो जाता है और बुद्धि के नाश होने से इस पुरुष का सर्वनाश हो जाता है अर्थात् वह अपने श्रेय साधन से गिर जाता है'।।

इन श्लोकों से यह ज्ञात होगा कि **सर्वनाश के क्रम का आरम्भ सांसारिक विषयों में सुख-बुद्धि पूर्वक उनका ध्यान और उनकी प्राप्ति की कामना से होता है।** इसके विपरीत, दृढ़-निश्चय पूर्वक एकमात्र 'सत्' वस्तु परमात्मा की स्मृति तथा उनके ध्यान से मनुष्य को अक्षय-सुख अर्थात् भगवान् की प्राप्ति होती है (गीता ८/७ व ८)।

सुख-बुद्धि से जिस किसी वस्तु की प्राप्ति का ध्यान होता है, उसे उस वस्तु का 'संग' कहा जाता है। **यह संग भावों, विचारों, व्यक्तियों, परिस्थितियों एवं वस्तुओं के निमित्त से होता है।** जिन निमित्तों से सांसारिक विषयों में सुख-बुद्धि हो, वे ही 'कुसंग' हैं, और जिनसे भगवत्प्राप्ति में सहायता मिले, वे ही 'सत्संग' कहलाते हैं।

एकमात्र 'सत्' वस्तु परमात्मा का अंश होने के कारण जीवात्मा भी स्वरूप से सत् ही है। सांसारिक विषय अनित्य और क्षण-भंगुर हैं, अतः वे सब 'असत्' हैं तथा सत्ता न होने पर भी उनका तात्कालिक उपयोग-मात्र होता है। उदाहरणार्थ - दर्पण में दीखने वाले प्रतिबिम्ब का कोई अस्तित्व नहीं होता, किन्तु वह वेष-सज्जा के लिए उपयोगी ही होता है। **इसी प्रकार सांसारिक विषयों का कोई अस्तित्व नहीं है, तथापि उनकी प्रतीति लोकसंग्रह के लिये उपयोगी है। किन्तु सुख-बुद्धि से उनका ग्रहण सर्वनाश का कारण है।**

सत्संग - तत्त्वज्ञानी महात्माओं के वचनों और विचारों का श्रवण करके उन पर मनन करना चाहिए। मनन इतना होना चाहिए कि **किसी दूसरे को भी उनसे अवगत करा सकें।** इस श्रवण और मनन के बाद जीवन के हर पहलू में उनका उपयोग अर्थात् 'निदिध्यासन' करना चाहिए। यह **श्रवण, मनन, निदिध्यासन एवं दूसरों से परस्पर उनका वर्णन करने से ही 'सत्संग' होता है। मात्र शरीर को महात्माजनों के सम्पर्क में बैठाना 'सत्संग' नहीं है।**

कुसंग - यह नियम है कि **जिस पल सत्संग न हो, वही कुसंग है।** उदाहरणार्थ - कहीं पहुँचने के लिये यदि वहाँ तक जाने वाली सड़क पर मनुष्य चलता रहे, तो वहाँ पहुँच सकता है। पर यदि वह सड़क से उतर जाये, तो सड़क की पटरी पर लगी झाड़ियों अथवा गड्ढों में उलझकर गिर जाता है। **केवल व्यक्तियों, वस्तुओं या स्थानों का संयोग ही कुसंग नहीं है, अपितु भावों, विचारों आदि अन्य निमित्तों से भी कुसंग होता है।** अतः भगवत्प्राप्ति की सड़क पर चलते रहना ही सत्संग है।

निष्कर्ष - सारांश यह है कि **यदि निरन्तर सत्संग होता रहे, तो कुसंग का त्याग अपने आप होगा**, उसके लिए अलग से कोई चेष्टा नहीं करनी पड़ती है। ऊपर कहे गये 'संग' के निमित्तों (भावों, विचारों आदि) का उपयोग भगवान्, धर्मग्रन्थ अथवा महात्माजनों की आज्ञानुसार करने से मनुष्य नित्य सत्संग में रह सकता है।